तसव्वुफ़

एक संक्षिप्त परिचय

पुस्तिका सीरीज़-86

प्रकाशक :

***isd* इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए,

लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन : 091-26177904, टेलीफैक्स : 091-26177904

ई-मेल : notowar.isd@gmail.com

वेबसाइट : www.isd.net.in

प्रकाशन वर्ष : 2019

केवल सीमित वितरण के लिए

अपनी पुस्तिका सीरीज़ के लिए हमने इस बार इस्लामी तसव्वुफ़ का चयन किया है और उसकी उत्पत्ति और विकास को विषय बनाया है। ये सूफ़ीवाद का एक अत्यंत संक्षिप्त परिचय है। मगर इसका प्रयास किया गया है कि तसव्वुफ़ की मूल रूपरेखा भलीभांति सामने आ जाए। तसव्वुफ़ का हमारी साझी विरासत में बहुत अहम योगदान है जिसकी झलक हमें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नज़र आती है और हमारी सामाजिक संरचना में वैचारिक स्तर पर जिस तरह मानवीय और नैतिक मूल्यों, सहिष्णुता और सुलहकुल पर जोर दिया गया है उसमें तसव्वुफ़ का भी अहम हिस्सा है।

तसव्वुफ़ विचारधारा के साथ-साथ एक पद्धति भी है जिसकी विशेष शब्दावली है। जो पूर्ण रूप से अरबी और फारसी से ली गई है। अलबत्ता बहुत से शब्द और कल्पनाएं तसव्वुफ़ की लोकप्रियता के कारण जनता में प्रचलित हैं और कानों को अजनबी नहीं मालूम होतीं। जैसे इश्क़-ए-हक़ीक़ी, नूर-ए-हक़ीक़ी, नूर-ए-अज़ल आदि। हमने इसका प्रयास किया है कि अधिकतर परिभाषिक शब्दों के हिंदी विकल्प दिए जाएं। कुछ का अनुवाद हमने शब्दकोशों की सहायता से स्वयं किया है। जिसमें गलती की संभावना भी है। अगर हमारे पाठकगण इस सिलसिले में हमारा मार्गदर्शन करेंगे तो हमें बड़ी खुशी होगी।

हमारी साझी विरासत के मौजूदा शक्ल अख़्तियार करने में जो कई शताब्दियों की ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, मुस्लिम सूफ़ियों का भी बहुत बड़ा हिस्सा रहा है। देश का शायद ही कोई भाग हो जहां इन सूफ़ियों की दरगाहें, मज़ारात या ख़ानक़ाहें न पाई जाती हों। इन सूफ़ियों के उर्स और मेलों में हर वर्ष लाखों लोग दूर-दूर से पहुंचते हैं। उनसे श्रद्धा रखने वालों में सिर्फ मुसलमान ही नहीं होते बल्कि उनमें एक बड़ी संख्या हिंदुओं और दूसरों धर्मों के अनुयायियों की होती है। ये सिलसिला सैकड़ों साल से जारी है जिसे देखते हुए यह प्रश्न मन में उठता है कि आख़िर लोग इन सूफ़ियों से इतनी गहरी श्रद्धा क्यों रखते हैं और उनकी मृत्यु के सैकड़ों साल के बाद भी उनकी दरगाहों और मज़ारों पर गहरी आस्था के साथ क्यों हाज़िर होते हैं। इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिए हमें तसव्वुफ़ (सूफ़ीवाद) का इतिहास, सूफ़ियों की शिक्षा और उनके विचारों पर एक नज़र डालनी होगी।

साधारणतया लोग यह समझते हैं कि भारत में सूफ़ियों के आगमन का सिलसिला यहां मुसलमानों की सल्तनत की स्थापना के बाद आरंभ होता है लेकिन यह बात सिर्फ इस हद तक सही है कि देश के मशहूर सूफ़ियों जैसे अजमेर में ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, दिल्ली में कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया, नसीरूद्दीन चिराग़ दिल्ली, रुड़की में अलाऊद्दीन साबिर, गुलबर्गा में ख़्वाजा गेसुदराज़, पाक पट्टन (पाकिस्तान) में फरीदगंज शक्कर आदि का संबंध तेरहवीं सदी से है। लेकिन अब ये बात ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हो चुकी

है कि मुसलमानों की सल्तनत कायम होने से पहले मुल्क के कई हिस्सों में मुसलमानों की आबादियां थीं और सूफ़ियों के आगमन का सिलसिला भी शुरू हो चुका था। प्रसिद्ध सूफ़ी शेख उस्मान हजवेरी जो दातागंज के नाम से मशहूर हैं, अपनी मशहूर किताब कशफुल्ल महजूव में बहुत से सूफ़ियों का उल्लेख किया है। इसके अलावा बिहार और उत्तर प्रदेश के ऐतिहासिक नगर कन्नौज में भी सूफ़ियों की मौजूदगी का पता चलता है।

तसव्वुफ़ शब्द के बारे में बहुत से विचार व्यक्त किए गए हैं जिनका संक्षिप्त में उल्लेख करना यहां आवश्यक लगता है। कुछ लोगों का कहना है कि ये शब्द सफ़ा (दिल की सफ़ाई और पवित्रता) से निकला है। कुछ ये कहते हैं कि इसका स्रोत अहले सुफ़्फ़ा अर्थात् वो लोग हैं जो मदीना में पैग़म्बर-ए-इस्लाम की मस्जिद में एक चबूतरे पर रहते थे और हर वक्त इबादत में व्यस्त रहते थे। कुछ लोगों का यह भी कथन है कि ये लफ्ज सौफ़ा से निकला है जो मक्के का एक कबीला था और काबा की देखभाल करता था। कुछ लोग इसे यूनानी शब्द सनोसोफ़ा से जोड़ते हैं और कुछ लोगों का कहना है कि इस शब्द की जड़ सौफ़ में है जिसके मायने ऊन के हैं और मध्य एशिया के बहुत से हिस्सों में सूफ़ियों को पश्मीना पोश भी कहा जाता था। क्योंकि वो ऊन के मोटे-झोटे कपड़े पहनते थे।

अलबेरूनी ने यह विचार व्यक्त किया है कि सूफ़ी के माने फिलॉस्फर हैं। और ये लफ्ज यूनानी से निकला है। यूनानी में फिलसोफ को फेलासोफा कहते हैं। जिसका मतलब है फलसफे का प्रेमी। अलबत्ता आमतौर पर खुद सूफ़ियों का कहना है कि ये लफ्ज सौफ़ यानि ऊन से निकला है और सूफ़िया अपने वस्त्र की वजह से ही सूफ़ी कहलाए। क्योंकि भेड़ों की ऊन के कपड़े पहनना पैग़म्बरों, वलियों और सिद्ध पुरुषों का निशान रहा है।

तसव्वुफ़ के स्रोतों के बारे में भी विभिन्न विचार पाए जाते हैं। प्रसिद्ध

इतिहासकार प्रोफेसर मोहम्मद हबीब लिखते हैं :

> हमें यह बात खूब याद रखनी चाहिए कि तसव्वुफ़ इस्लाम से कई सौ बरस पहले मानव चिंतन का भाग बन चुका था। दाराशिकोह का ख़्याल बिल्कुल सही है कि तसव्वुफ़ की पहली प्रमाणित व्याख्या उपनिषदों में मिलती है।

एक और इतिहासकार एस.ए.ए. रिज़वी ने तसव्वुफ़ पर हिंदू दर्शन के प्रभाव का विस्तार से वर्णन करते हुए अलबेरूनी के हवाले से लिखा है कि आत्मा से सम्बन्धित सूफ़िया के विचार लगभग वही हैं जो पातंजलि के योग सूत्र में पाए जाते हैं। यही नहीं अलबेरूनी ने गीता के कुछ अंशों के हवाले से सूफ़िया के फ़ना के नज़रिये (नश्वरता) की निशानदेही की है। प्रो. रिज़वी का कहना है कि शेख हजवेरी ने अपनी किताब में ऐसे सूफ़ियों का उल्लेख किया है जो ऐसे विचारों पर विश्वास रखते थे जिनमें हिंदू दर्शन की झलक मिलती है। प्रो. रिज़वी ने ये भी लिखा है 13वीं सदी में मुस्लिम सूफ़ियों का कनफटे योगियों से वार्तालाप हुआ था। शेख निज़ामुद्दीन औलिया ने भी योगियों के साथ अपनी बातचीत का उल्लेख किया है, जिससे ये मालूम होता है कि वो मानव शरीर के ''शिव और शक्ति'' में विभाजन के योगियों के ख़्याल से बहुत प्रभावित हुए थे। प्रो. रिज़वी ने वहद्तुल वजूद (अद्वैतवाद) की सूफ़ियाना परिकल्पना और इससे सम्बन्धित योगियों के विचारों के बीच आश्चर्यजनक समानता पर भी प्रकाश डाला है।

श्री शंकराचार्य (700-820) ने उपनिषदों की व्याख्या करते हुए अद्वैतवाद की जो परिकल्पना दी है उसमें हक़ीक़त या ब्रह्मा को परम अस्तित्व, परम विवेक और परम आनंद कहा है। उनका यह भी कहना है कि वो तमाम सूरतों में अपना जलवा दिखा रहा है। मगर इन सूरतों को सत्य समझना धोखा है। वो सूरतों से परे है। मूल अस्तित्व ब्रह्मा का है। श्री शंकराचार्य ने बताया कि भौतिक जगत वास्तव में माया है जो अविद्या से पैदा होती है। मगर ज्ञान

हासिल होते ही ये अविद्या खत्म हो जाती है। कुछ भिन्नताओं के साथ शंकराचार्य के इस नज़रिए और वहदतुल वजूद के बीच आश्चर्यजनक सम्मानता पाई जाती है। जिसका दाराशिकोह ने अपनी पुस्तक मजमाऊल बहरेन में उल्लेख किया है।

जहां तक सूफ़ियों का प्रश्न है तो उनके नजदीक तसव्वुफ़ का स्रोत इस्लाम और कुरान है। और वो इसके सबूत में कुरान की अनेकों आयात, पैग़म्बर की हदीसें पेश करते हैं लेकिन तसव्वुफ़ का मूल स्वरूप और विचार, ईश्वर और ब्रह्मांड के बारे में उसका नज़रिया और ख़ालिक (रचयिता) और मख़लूक (रचना) के आपसी संबंध के बारे में उसकी जो भी सोच है उसे पूर्णत: इस्लामी करार देना मुश्किल है।

मगर ये बात जरूर है और जैसा कि प्रो. मोहम्मद हसन ने विभिन्न शोधकर्ताओं के हवाले से लिखा है कि

> हर धर्म के विकास में कुदरती तौर पर एक ऐसी मंज़िल आती है जब सूफ़ीवादी चिंतन का उदय होता है। और धर्म की खारिजी रसूम और इबादतों से आगे बढ़कर इंसान का ज़ेहन, उसमें एकाकी (Abstract) पहलू तलाश करने लगता है। विवेक, तर्क या आस्था के बजाय 'विजदान', 'कश्फ' और 'कैफियत' के द्वारा पूरे जग की व्यवस्था की वास्तविकता और इस व्यवस्था में इंसान के अस्तित्व की हैसियत और मंज़िल के बारे में चिंतन करने लगता है।

कुछ इस तरह के विचार प्रो. खलीक अहमद निज़ामी ने भी व्यक्त किए हैं। वो लिखते हैं कि

> तसव्वुफ़ के विचार हर देश, भाषा और धर्म में व्यक्त किए गए हैं। ज़ाहिर से हटकर बातिन (अंदर) की तरफ ध्यान देना मानव प्रकृति की विशेषता है। डब्ल्यू.एफ.क्लॉर्क, लुई एम.नोन का ख़्याल है कि हर

> क़ौम में एक विशेष समय में तसव्वुफ़ की तरफ झुकाव पैदा होता है। ज़माने के हालात मानव प्रकृति को बातिनी इस्लाह (आंतरिक सुधार) और प्रशिक्षण की राहें तलाश करने पर मजबूर करते हैं।

इस्लामी तसव्वुफ़ के आरंभ और विकास के बहुत से राजनीतिक और सामाजिक कारण हैं। कैरन आर्मस्ट्रांग ने यह ख़्याल जाहिर किया है कि जब इस्लामी खिलाफ़त की विजयों का सिलसिला शुरू हुआ और देश के देश फतह होने लगे तो जनजीवन में भी जबरदस्त तब्दीली पैदा हुई। सत्ता और शक्ति और दौलत की रैल-पैल ने लोगों की सोच बदल दी। इस जमाने में जहां और बहुत से पंथ पैदा हुए वहां एक ऐसा भी वर्ग उभर कर सामने आया जो बढ़ती हुई सामाजिक और आर्थिक असमानता, दौलत, शान-ओ-शौकत और ऐश-ओ-आराम और इस्लाम के आरंभिक दिनों की सादगी को त्यागने से बहुत दुखी था। और पैग़म्बर के ज़माने की सादा ज़िंदगी के वापिस लौटने की तमन्ना करता था। इस दौर के सूफ़ियों हसन बसरी, अबु हाशिम और राबिया बसरी ने अगर दिल की सफ़ाई, नेकी, फेक्र-ओ-क़िनाअत (फकीरी और जो भी है उस पर राज़ी खुशी), इस्तेग़ना (बेनियाज़ी, बेपरवाही), तवक्कुल (ईश्वर पर भरोसा), अगर ज्यादा जोर दिया है तो इसे उस ज़माने के सामाजिक हालात का नतीजा भी समझना चाहिए।

इसके बाद वो दौर आता है जब एक व्यवस्था और पद्धति के तौर पर तसव्वुफ़ की रूपरेखा बनने लगती है। ये उम्मैय्या ख़िलाफत का अंतिम और अब्बासी खिलाफत का ज़माना है। इस दौर में बग़दाद में बैतुल हिकमत कायम हुआ और यूनानी और संस्कृत की किताबों का अरबी में अनुवाद का काम बड़े पैमाने पर होने लगा। इल्मी दृष्टि से ये अब्बासी सल्तनत का स्वर्ण युग कहा जाता है। मगर जब यूनानी दर्शन की रोशनी में धर्म के वसूलों, विश्वास और आस्थाओं को परखा जाने लगा तो शंका और संदेह भी पैदा होने लगे। इस दौर के सूफ़ियों ने यह महसूस किया कि ईश्वर, इंसान और ब्रह्मांड

के आपसी संबंधों को केवल व्यक्तिगत अनुभव, कश्फ और विजदान के द्वारा ही समझा जा सकता है और इस मामले में तर्क या दर्शन या दूसरे शब्दों में विवेक हमारा मार्ग दर्शक नहीं बन सकता। क्योंकि ईश्वर अक्ल-ए-कुल (परम विवेक) है। जिसे इंसान अपने सीमित विवेक से नहीं समझ सकता।

सूफ़िया की शिक्षाओं में ईश्वर से प्रेम को बुनियादी अहमियत हासिल है। यह सूफ़िया अपने कश्फ से इस नतीजे पर पहुंचे कि ईश्वर को सिर्फ इश्क़ के ज़रिए ही समझा जा सकता है। या ये कि ईश्वर से इश्क ही ज़िंदगी का असल उद्देश्य है। यहां यह बात भी जेहन में रखनी चाहिए कि यही वो जमाना है जब उलमा, इस्लाम को दूसरे धर्मों से अलग करके उसे एक विशेष रूप देने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन सूफ़िया कुरान के इस कथन पर विश्वास रखते थे कि सारे सच्चे धर्म वास्तव में एक हैं। ये सूफ़िया शारीरिक तपस्या, शब बेदारी (रातों में जागना), कठिन परिश्रम, उपवास आदि के द्वारा ईश्वर को उसी तरह अनुभव करना चाहते थे जैसा कि उनके विचार में पैग़म्बर-ए-इस्लाम ने किया था। इस कोशिश में कभी-कभी ऐसे मुकाम आते थे जब वो यह कह उठते थे कि मैं ही हक़ (ख़ुदा) हूं। चुनांचे मंसूर हल्लाज के अनल-हक़ के नारे में इसी व्यक्तिगत अनुभव की गूंज सुनाई पड़ती है। जिसकी वजह से उन्हें 913 ईस्वी पर सूली पर लटका दिया गया। जिसके बाद से आज तक के तसव्वुफ़ के इतिहास में मंसूर का नाम हक़गोई (सच बोलना) का पर्याय बन गया है। मंसूर का ये एलान कि मैं ही हक़ हूं बजाहिर इस्लाम की शिक्षाओं के विरूद्ध मालूम होता है मगर अल गज़ाली ने अपनी किताब मिशकातुल अनवार में उसका बचाव करते हुए इसे इस्लाम के अनुसार बताया है।

इस दौर के सूफ़ियों में बायजीद बुस्तामी, जुन्नैद बग़दादी, अबू नज़र सिराज, अबू सईद अल अरबी, मारूफ़ करखी, जून्नून मिश्री के नाम उल्लेखनीय हैं। इस जमाने में तसव्वुफ़ के बहुत से परिभाषिक शब्द

जैसे फ़ना (नश्वरता, विलय), बक़ा (नित्यता), तौहीद (एकता), हाल, मुकाम आदि का चलन हुआ और उनके अर्थ तय किए जाने लगे। और यही वो जमाना है जब शरीयत और तरीकत के दरम्यान दूरी पैदा होती हुई दिखाई पड़ती है। एक अहम बात ये भी है कि शरीयत और तरीकत के दरम्यान टकराव में सत्ता ने साधारणतया हमेशा शरीयत का साथ दिया है। यही वजह है कि तसव्वुफ़ के इतिहास में अंतिम कुछ शताब्दियों को छोड़कर सूफ़िया ने दरबार या बादशाहों से दूरी बनाए रखी और हुकूमत के हामी उलमा को दुनिया परस्त समझते रहे।

प्रो. ख़लीक़ अहमद निज़ामी का ख़्याल है कि तसव्वुफ़ के वसूलों की बुनियाद वहदतुल वजूद (अद्वैतवाद) पर है। जिसकी आरंभिक झलक हमें बायजीद बुस्तामी और मंसूर हल्लाज के यहां नज़र आती है। लेकिन तसव्वुफ़ का नज़रिया बहुत स्पष्ट और ठोस शक्ल में सबसे पहले मुहय्युद्दीन अरबी के यहां जिन्हें शेख अकबर कहा जाता है नज़र आता है। संक्षिप्त में वहदतुल वजूद का अर्थ ये है कि ईश्वर के सिवा इस पूरी कायनात में कोई चीज़ मौजूद नहीं है। या ये कि जो कुछ मौजूद है सब ख़ुदा ही है। इसी को हम:ऊस्त कहा गया है। कायनात या माद्दा (पदार्थ) का कोई वजूद नहीं। और हर जगह सिर्फ एक वजूद-ए-मुतलक का ही जहूर है। और यही वजूद हक़ है।

प्रो. मोहम्मद हसन इसकी व्याख्या इस तरह करते हैं कि

> इस वजूद की कोई शक्ल या हद नहीं है लेकिन इसका जहूर और तजल्ली, शक्ल और हद में होती है। इसके किसी शक्ल में ज़ाहिर होने से इस वजूद में कोई तब्दीली नहीं होती। वो जैसा था वैसा ही है और वैसा ही रहेगा..... ये वजूद एक है मगर उसके लिबास और मजाहिर अनेक हैं। यही वजूद तमाम मौजूदात (संसार की सभी चीज़ें) की वास्तविकता और बातिन है। कायनात का एक ज़र्रा भी इससे खाली नहीं। इब्ने अरबी

के अनुसार हक़ जब अपने को जाहिर करता है तो भौतिक शक्लों में ही जाहिर होता है। इस तरह आमतौर पर जिन वस्तुओं को मौजूद समझा जाता है वो सब की सब जलवा-ए-ज़ात (एक ही हस्ती के जलवे) हैं।

यही बात इक़बाल ने इस तरह कही है

हक़ीक़त एक है हर शय की नूरी हो कि नारी
लहू ख़ुर्शीद का टपके अगर ज़र्रे का दिल चीरें।
(हर चीज़ की वास्तविकता एक ही है चाहे वो आग से बनी हो या रोशनी से। अगर जर्रे का दिल चीरा जाए तो उससे भी सूरज का ही ख़ून टपकेगा।)

विज्ञान की हालिया खोजों की रोशनी में देखा जाए तो आश्चर्य होता है कि किस तरह हिंदू दार्शनिक और सूफ़िया चीज़ों की वास्तविकता के बारे में किसी वैज्ञानिक प्रयोग के बगैर केवल अपने विजदान के द्वारा एक वैज्ञानिक सच्चाई के बिल्कुल निकट कैसे पहुंच गए थे। तसव्वुफ़ के इस दृष्टिकोण ने वहदत-ए-अदियान (धर्मों की एकता) पर ज़ोर दिया अर्थात् सच्चाई तो एक है। अलबत्ता उस तक पहुंचने के मार्ग अलग-अलग हो सकते हैं। यानि विभिन्न धर्मों के बीच हमें जो भिन्नताएं नज़र आती हैं उनकी असल में कोई वास्तविकता नहीं है। और इस बुनियाद पर इंसान को बांटना और उनके दरम्यान दूरी पैदा करना किसी तरह दुरूस्त नहीं हो सकता। यही कारण है कि सूफ़िया ईश्वर और बंदे के दरम्यान मोहब्बत के संबंध पर जोर देते थे और इसी मोहब्बत को मार्फत-ए-इलाही (सिद्धी और ज्ञान) का सबसे बेहतर और प्रमाणित रास्ता समझते थे। सूफ़ियों की शिक्षाओं में सुलह-कुल और वसीउल मशरबी, सहिष्णुता आदि की जो परम्परा मिलती है वो इसी वहदतुल वजूद के नज़रिए का नतीजा है। खलीक अहमद निज़ामी लिखते हैं :

वहदतुल वजूद के नज़रिए में विश्वास का प्रभाव रोजमर्रा की ज़िंदगी में बड़ा जबरदस्त होता है। इस पर विश्वास रखने वाले का दृष्टिकोण बुलंद, सहानुभूतियां और कृपाएं

अपार होती हैं और उसके उद्देश्य महान होते हैं। वो अमली तौर पर इसका कायल होता है कि पूरी मानवता ईश्वर का कुनबा है। वो हर तरीके पर हमदर्दी के साथ ग़ौर करने के लिए तैयार रहता है क्योंकि उसकी नज़र में सच्चाई तो एक ही है। वहदतुल वजूद पर यकीन करने वाले इंसान में संकीर्णता और भेदभाव के जज़्बे का अंत हो जाता है।

मोहम्मद हसन लिखते हैं कि

सूफ़िया सिर्फ नीयत की सच्चाई और दिल की कैफियत को बुनियादी स्थान देते थे। यानी इश्क़ और मोहब्बत सिद्धि और ज्ञान प्राप्त करने का सबसे प्रमाणित और सच्चा रास्ता है। इस पर चलने के लिए महज जाब्ता परस्ती और जाहिरी रूसूम और इबादात 'मसलन नमाज, रोज़ा, हज आदि' काफी नहीं। इस तरह इश्क़ के ख़्याल को तसव्वुफ़ की व्यवस्था में बुनियादी हैसियत हासिल हो गई। इस इश्क़ की शक्ल ये है कि कायनात की उत्पत्ति और रचना हुस्न की इस तमन्ना का नतीजा है कि उससे इश्क़ किया जाए... अफलातून ने इश्क़ की परिभाषा ही इस तरह की है कि हुस्न की अपने इज़हार की तमन्ना का नाम इश्क़ है। हुस्न अपने को जाहिर करना चाहता है और इसी इज़हार की ख्वाहिश और तमन्ना ने हुस्न को अपनी तरफ देखने के लिए मजबूर किया और कायनात की विभिन्न चीज़ों में उसने खुद को जाहिर किया।

शिब्ली नोमानी का ख़्याल है कि

तसव्वुफ़ की असल जुबान इश्क़ और मोहब्बत है। इस हालत में दोस्त और दुश्मन का फ़र्क़ ख़त्म हो जाता है। हर चीज़ में उसी का जलवा नज़र आता है। हर चीज़ से मोहब्बत की बू आती है। हर चीज़ की तरफ दिल खिंचता है। सारा आलम (जगत) एक माशूक

(प्रियतम) बनकर नज़र आता है..... तसव्वुफ़ की नज़र में तमाम आलम माशूक-ए-हक़ीक़ी (अलौकिक प्रीतम) का जलवा है। जो कुछ नज़र आता है उसी के करिश्में और अदाएं हैं। एक आत्मा है जो तमाम चीज़ों में दौड़ रही है। एक नूर (प्रकाश) है जिससे पूरी कायनात रोशन है। एक सूरज है जो हर ज़र्रे में चमक रहा है।

ताब दर ज़ुल्फ़ दसमा बर अबरु
सुरमा दर चश्म ग़ाज़ा बर रुख्सार
रंग दर आब ओ आब दर याक़ूत
बू ए दर मुश्क ओ मुश्क दर तातार
(वो कद में जलवा, ज़ुल्फ़ में शिकन, अबरू में दसमा (नील), याक़ूत में चमक और मुश्क में खुशबू है।)

ग़ालिब ने इसी ख़्याल को अपने विशेष प्रश्नात्मक अंदाज में इस तरह अदा किया है कि

जबकि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद
फिर ये हंगामा ए ख़ुदा क्या है
ये परी चेहरा लोग कैसे हैं
ग़मज़ा ओ ऊशवा ओ अदा क्या है
शिकने ज़ुल्फ़ अंबरीं क्यों है
निगहे चश्म सुरमा सा क्या है
लाला ओ गुल कहां से आए हैं
अब्र क्या चीज़ है हवा क्या है

सूफ़ी विचारधारा में फ़ना और बक़ा दो ऐसे शब्द हैं जिनका समझना जरूरी है। शिब्ली नोमानी का ख़्याल है कि इंसान कुदरती तौर पर मृत्यु या नेसती (ना होना) से घबराता है। लेकिन सूफ़िया इसकी कामना करते हैं और तसव्वुफ़ में सच्चाई तक पहुँचने वाले 'सालिक' (ईश्वर की निकटता प्राप्त करने का इच्छुक) के लिए जो मुकामात

(अवस्थाएं) मुकर्रर हैं उनमें फ़ना आख़िरी मंज़िल है। सूफ़िया का ख़्याल है कि दुनिया में कोई चीज़ पैदा होकर फ़ना नहीं होती। सिर्फ उसकी सूरत बदल जाती है।

कुदाम दाना फ़रो रफ़्त दर ज़मीं कि ना रूस्त
चरा ब दानए इन्सानत ईं गुमां बाशद
(वो कौन सा दाना है जो ज़मीन के अंदर गया और न उगा। फिर इंसान के बारे में ऐसा ख़्याल क्यों हो।)

सूफ़िया कहते हैं कि फ़ना के बाद ही बक़ा है। हर नया वजूद (अस्तित्व) नए शून्य का मोहताज है। नए-नए शून्य न हों तो नई हस्तियां पैदा न हों। उन्नति या तरक्की वास्तव में फ़ना, अदम (शून्य) और बक़ा (नित्यता) के क्रम का ही नाम है। यानी पिछली सूरत फ़ना होती है और तरक्की करके नई सूरत पैदा होती है। अगर एक ही हालत कायम रहती तो तरक्की की रफ्तार रूक जाती। मौलाना रूम ने इस मसले को विस्तार से बयान किया है।

तू अज़्ां रोज़े की दर हस्त आमदी
आतिशी या ख़ाक या बादी बदी
(तुम जिस दिन पैदा हुए उससे पहले मिट्टी या कोई और तत्व थे)

ग़र बरां हालत तुरा बूदे बक़ा
कै रसीदे मर तुरा ईं इरतक़ा
(अगर तुम इसी हालत में बाकी रहते तो तुम्हारा विकास कैसे होता)

अज़ मुबदल हस्ती अवल न माँद
हस्ती ए दीगर बजाय उ निशाँद
(बदलने वाले ने पहली हस्ती मिटा दी और उसकी जगह दूसरी कायम कर दी।)

ईं बक़ाहा अज़ फ़नाहा याफ़्ती
अज़ फ़ना पस रुह चिरा बरताफ़्ती
(तुमने ये बकाएं फ़नाहों से पाईं फिर फ़ना से क्यों मुंह मोड़ते हो)

दर फ़नाहा ईं बक़ाहा दीदई
बर बकाए जिस्म चूं चस्पीदई
(तुमने इन फ़नाहों में ये बकाएं देखी हैं तो अब जिस्म की बक़ा से क्यों चिपके हुए हो)

ताज़ा मी गीरद कोहन रा मी सयार
ज़ाँ की इंसालत फ़ुज़ूं आमद ज़ेपार
(नया लो और पुराना छोड़ दो क्योंकि हर नया साल पुराने साल से बेहतर आता है)

हाफ़िज़ ने भी एक शेर में इस ख़्याल को नज़म किया है कि जिसका दिल इश्क़ से ज़िंदा हो जाता है उसको कभी मौत नहीं आती।

हरगिज़ नमीरद आं कि दिलश ज़िंदा शुद बेइश्क़
सबतस्त बर ज़रीदय आलम दवाम मा

कहते हैं कि एक बार समा (कव्वाली और संगीत) की महफिल में जब क़व्वाल गाते-गाते इस शेर पर पहुंचे कि

कुश्तगाने ख़ंजरे तस्लीम रा
हर ज़मां अज़गैब जाने दीगर अस्त

तो ख्वाज़ा कुतबुद्दीन बख्तियार काकी पर एक अजीब हालत तारी हो गई। और वो बेहोश हो गए। जब होश आया तो कव्वालों को हुक्म हुआ कि यही शेर फिर गाया जाए। ख्वाज़ा बख्तियार काकी पर बेखुदी तारी हो गई और ये हालत कई रोज़ तक रही। इसके बाद उनका स्वर्गवास हो गया। इस शेर में भी यही बात कही गई है कि

जो लोग इश्क़ की राह में जान दे देते हैं उन्हें कभी मौत नहीं आती और वो हर ज़माने में गैब से एक नई जान लेकर पैदा होते हैं।

तसव्वुफ़ इंसान को एक महान और उच्च स्थान देता है और उसे आलम-ए-अकबर बताता है। आलम-ए-मौजूदात अर्थात् संसार की सभी वस्तुएँ जमाद (पदार्थ, तत्व), नबात (वनस्पति), हैवान (जीव) के क्रम में पाई जाती हैं। उनसे ऊपर का दर्जा इंसान का है। और इंसान में विकास की ये सारी अवस्थाएं विद्यमान हैं। इसलिए वो सबसे बड़ा आलम यानी आलम-ए-अकबर है। इसलिए तसव्वुफ़ का एक नुक्ता यह है कि इंसान को बाह्य जगत का ज्ञान हासिल करने, उसके विश्लेषण और छानबीन की आवश्यकता नहीं है। इंसान ख़ुद ही जगत और जगत रचयिता की अभिव्यक्ति है। वो अगर अपने को जान ले तो सब कुछ जान लिया।

तसव्वुफ़ के मुखतलिफ सिलसिले हैं। जैसे चिश्तिया, सहरवर्दिया, क़ादरिया, नक़्शबंदिया आदि। इनके दरम्यान वैचारिक भेद भी पाए जाते हैं। कुछ सिलसिलों में शरीयत पर बहुत ज्यादा जोर दिया जाता है और उसे छोड़ देना गुनाह समझा जाता है। लेकिन दीगर में इतनी कट्टरता नहीं पाई जाती। बल्कि नीयत की सच्चाई और दिल की सफ़ाई को असली ईमान समझा जाता है। जिसके बगैर कोई भी इबादत उनके नजदीक महज रस्म परस्ती है। चंद सिलसिले समा (कव्वाली वगैरह) को इस्लाम के विरूद्ध बताते हैं और चंद कुछ शर्तों के इसकी इजाजत देते हैं। लेकिन तसव्वुफ़ के बुनियादी वसूलों के बारे में ये तमाम सिलसिले लगभग एक राय हैं। अलबत्ता वहदतुल वजूद के बारे में इनका ख़्याल है कि इसमें एहतियात से काम लेने की ज़रूरत है क्योंकि ये एक पेचीदा विचारधारा है। जिसे अगर ठीक से न समझा और समझाया जाए तो लोग भटक सकते हैं।

तसव्वुफ़ को कविता से एक प्राकृतिक लगाव मालूम होता है। चुनांचे तसव्वुफ़ के विचार जितनी सुंदरता के साथ फारसी और उर्दू

कविता में बयान हुए हैं उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। संभवत: इसकी वजह यह है कि दुनिया कि हर भाषा में कविता इश्क़ और मोहब्बत की दास्तान है और तसव्वुफ़ का भी केंद्र बिंदु इश्क़ हक़ीक़ी ही है। और इसी इश्क़ ए हक़ीक़ी की विभिन्न हालतों का कविता की भाषा में उपमा और रूपकों के ज़रिए बयान बड़ा प्रभावकारी होता है। फारसी और उर्दू कविता और विशेष रूप से ग़ज़ल की विधा भी प्रभावशीलता में इज़ाफ़ा करती है। क्योंकि इसमें हर बात इशारों इशारों में कही जाती और पढ़ने वाला जब अपने अनुभव की मदद से उनके अर्थ तक पहुँचता है तो उसके दिल पर गहरा असर होता है।

जरूरी मालूम होता है कि हम ये देखने का प्रयास करें कि हमारी कविता में तसव्वुफ़ की आम धारणाओं का इज़हार कैसे और किस तरह हुआ है। प्रो. मोहम्मद हसन ने इस पर विस्तार से लिखा है। जिसे हम संक्षिप्त में यहां उन्हीं के शब्दों में नकल करते हैं।

1. वजूद ए हक़ीक़ी सिर्फ एक है। बाकी सारे मौजूदात वहमे गैरियत (ये भ्रम की खुदा के अलावा भी कोई है) का नतीजा हैं। सारे मौजूदात के परदे में महबूब ए हक़ीक़ी का जलवा है। जिसे देखने के लिए नज़र चाहिए।

2. मगर ये दृष्टि ज्ञान, तर्क, विवेक और कर्म से नहीं पैदा होती। केवल सच्ची बसीरत (आंतरिक प्रकाश) और विजदान से हासिल हो सकती है और ये विजदान और बसीरत इश्क़ से पैदा होता है। इंसान की बसीरत की सबसे बड़ी मंज़िल यह है कि वह इश्क़ में डूब जाए।

3. इश्क़ ही सिद्धि और ज्ञान के रास्ते पर ले जाता

है। इश्क़ मजाज़ी (लौकिक प्रेम), इश्क़ हक़ीक़ी (अलौकिक प्रेम) की सीढ़ी है। इश्क़ मजाज़ी से इंसान तवक्कुल, सब्र और रज़ा, तर्क-ए-हवस (लालच को मिटाना) और ईसार (स्वार्थ का त्याग) सीखता है। मार्फत (सिद्धि) के लिए जाहिरी रीति-रिवाज की पाबंदी अनिवार्य नहीं है। इंसान का अंदर और बाहर एक जैसा होना चाहिए। जिसके बिना नीयत में खलूस (शुद्धता) नहीं पैदा हो सकता। सारे इंसान बराबर हैं और सारे धर्म महबूब-ए-हक़ीक़ी तक पहुंचने का ज़रिया हैं। अगर सच्चे दिल से ख़ुदा की इबादत की जाए तो वो काबे में भी मिल सकता है, मंदिर में भी और गिरजाघर में भी।

दिल बदस्त आवर कि हज ए अकबरस्त
वज़ हज़ारां काबा यक दिल बेहतर अस्त
काबा बुनगाह ए ख़लील ए आज़रस्त
दिल बदरगाहे जलील अकबरस्त
(लोगों के दिल जीतो क्योंकि ये सबसे बड़ा हज है। एक दिल हजारों काबे से बेहतर है क्योंकि काबा ख़लील (पैग़म्बर इब्राहिम) का बनाया हुआ है जबकि दिल ख़ुदा की बारगाह है।)

इस ख़्याल को उर्दू के एक शायर ने इस तरह बयान किया है

टूटा जो काबा कौन सी ये जायग़ाम है शेख
कुछ क़सर ए दिल नहीं कि बनाया न जाएगा
(काबा का गिर जाना कौन से अफसोस की बात है। यह कोई दिल का महल तो नहीं कि दोबारा न बन सके।)

दर हैरतम की दुश्मनी ये कुफ्र ओ दीं चिरास्त
अज यक चिराग़ काबा ओ बुतखाना रोशन अस्त
(मैं हैरान हूं कि कुफ्र ओ ईमान की दुश्मनी क्या है। एक ही चिराग़ है जिससे काबा और बुतखाना दोनों में रोशनी है।)

आरिफ़ हम अज इस्लाम ख़राब अस्त ओ हम अज कुफ्र
परवाना चिराग़े हरम ओ दैर न दानद
(आरिफ़ (सिद्ध पुरूष) इस्लाम और कुफ्र दोनों से तंग है। क्योंकि परवाना काबा और बुतखाने के चिराग़ में फ़र्क़ नहीं करता।)

इसी बात को हमारे दौर के एक बड़े शायर जमील मज़हरी ने इस तरह बयान किया है

कुफ्र क्या है हरम ओ दैर की तफरीक जमील
सख्त काफिर है वो हिंदू जो मुसलमां हो जाए।
(मंदिर और मस्जिद के बीच फ़र्क़ करने का नाम ही कुफ्र है।)

यही ख़्याल मीर तकी मीर ने इस तरह अदा किया है।

उसके फरोगे हुस्न से झमके है सब ए नूर
शमे हरम हो या कि दीया सोमनाथ का।
(एक ही नूर ए हक़ीक़ी है जिससे काबे की शमा और सोमनाथ का दीया जल रहा है।)

था मुस्तआर हुस्न से उसके जो नूर था
ख़ुर्शीद में भी उसका ही ज़र्रा जहूर था
(जो भी रोशनी है वो उसी हुस्न ए हक़ीक़ी का अक्स है। सूरज भी उसी के नूर से रोशन है)

पहुंचा जो अपने आप को तो मैं पहुंचा ख़ुदा के तईं
मालूम अब हुआ कि बहुत मैं भी दूर था
(जब मैंने अपने को पहचान लिया तो ख़ुदा को भी पहचान लिया)

था तो वो रश्क-ए-हूर-ए बहिशती हमीं में मीर
समझे न हम तो फ़हम का अपनी कसूर था
(वो हसीन महबूब तो हमारे अपने दिल में था मगर हम अपनी नादानी की वजह से नहीं पहचान सके।)

हस्ती अपनी हुबाब की सी है
ये नुमाइश शराब की सी है
(अपना वजूद पानी के बुलबुले की तरह है और हमारे आसपास ये जो सब कुछ नज़र आ रहा है वो मरीचिका है यानी नज़र का धोखा है।)

हस्ती के मत फरेब में आ जाइयो असद
आलम तमाम वहशते दामे ख़्याल है
(हस्ती की कोई हक़ीक़त नहीं, ये सारा आलम सिर्फ एक फरेब है।)

मत खाइयो फरेब-ए-हस्ती
हर चंद कहें कि है, नहीं है
(हस्ती का धोखा मत खाइए, लोग लाख कहें कि है, सच तो ये है नहीं है)

जग में आकर इधर-उधर देखा
तू ही आया नज़र जिधर देखा

महरम नहीं है तू ही नवा हाए राज़ का
यां वरना जो हिजाब है परदा है साज़ का
(चूंकि तू राज़ के गीतों यानी हक़ीक़त के नगमों से आगाह नहीं इसलिए साज़ का परदा तेरे लिए ओट बन गया है।)

है मुश्तमिल नमूदे सुअर पर वजूदे बहर
यां क्या धरा है क़तरा ओ मौजो हुबाब में
(समुद्र खुद को तरह-तरह की सूरतों यानी बुलबुले, मौज और क़तरों की शकल में जाहिर कर रहा है वरना इन सब की क्या औकात है।)

नहीं कुछ सुब्बह ओ जुन्नार के परदे में गीराई
वफादारी में शेख ओ बरहमन की आजमाइश है
(शेख की तस्बीह और बरहमन की जुन्नार (जनेऊ) में ऐसी कोई बात नहीं जिसने उनका पकड़ रखा हो। बल्कि उनसे शेख और बरहमन की वफादारी का इम्तहान लेना मकसद है। यानी कब तक वो अपने तरीके पर कायम रहते हैं और इसके वफादार रहते हैं।)

वफादारी बशर्ते उस्तवारी असल इमां है
मरे बुतखाने में तो काबा में गाड़ो बरहमन को
(ग़ालिब के शागिर्द हाली ने इस शेर की व्याख्या इस तरह की है - जब बरहमन अपनी सारी उम्र बुतखाने में काट दे और वहीं मर जाए, तो वो इस बात का हक़दार है कि उसको काबे में दफ़न किया जाए। इसलिए कि उसने अपनी वफदारी का पूरा-पूरा हक़ अदा कर दिया और यही असली ईमान है।)

सूफ़िया का ये ख़्याल है कि मंदिर, मस्जिद, काबा और कलीशा

मंज़िल नहीं बल्कि मंज़िल तक पहुंचने के रास्ते हो सकते हैं। शायरी में भी इस ख़्याल का इज़हार अनेकों ढंग से हुआ है।

है परे सरहदे इदराक से अपना मसजूद
क़िबला को अहले नज़र किबलानुमा कहते हैं
(हमारा मसजूद (जिसको सज़दा किया जाए) काबा नहीं है। हमारा मसजूद वो है जिसको अकल दरयाफ्त नहीं कर सकती। हमने अपने मसजूद को सजदा करने के लिए एक दिशा तय कर ली। यही वजह है कि जो हक़ीक़त को समझते हैं वो क़िबला को ख़ुदा नहीं ख़ुदानुमा कहते हैं।)

फ़ारसी के एक शेर में यही ख़्याल कुछ इस तरह अदा किया गया है

काबा रा वीरां मकून कि आं जा यक नफ़स
गह गहे पसमां दगाने राह मंज़िल मी कुनंद
(काबे को वीरान मत करो क्योंकि कभी-कभी रास्ते में पीछे रह जाने वाले लोग यहां चंद घड़ी के लिए आराम कर लेते हैं।)

दिले हर क़तरा है साज़े अनल बहर
हम उसके हैं हमारा पूछना क्या
(हर क़तरे का दिल साज़े अनल बहर है। यानी हर क़तरे के साज़ से मैं समुंद्र हूं की आवाज़ आती है। ये क़तरा बहुत छोटा है मगर दरिया में मिलकर दरिया बन जाता है। इसलिए हर क़तरा दरिया होने का दावेदार है। बिल्कुल उसी तरह मैं भी 'नाचीज़' हूं लेकिन अनलहक (मैं ही ख़ुदा हूँ) का दावेदार हूँ क्योंकि मैं उसी अथाह समुद्र का हिस्सा हूँ)

है रंग ए लाला ओ गुलो नसरीं जुदा-जुदा
हर रंग में बहार का असबात चाहिए

(लाला गुलाब और नसरीं अलग-अलग रंग के फूल हैं लेकिन देखने वाले के नजदीक उनकी भिन्नता कोई मानी नहीं रखती। उन्हें हर रंग में बहार का सबूत मिलता है। यानी मौजूदात की विभिन्न शक्लें हैं लेकिन हक़ीक़त का जलवा हर एक में मौजूद है।)

तसव्वुफ़ के ये मूल बिंदु प्रेममार्गी सूफ़ियों कवियों के यहां भी विस्तार के साथ पेश किए गए हैं। लेकिन इन कवियों ने इसके लिए एक विशेष शैली का प्रयोग किया है और किसी राजा या राजकुमारी की प्रेम कथा के परदे में अपने जीवन दर्शन की व्याख्या की है। और ये बताने का प्रयास किया है कि जब तक शरीर और भौतिक जगत का मोह दिल में है उस वक्त तक अलौकिक प्रेम तक पहुंचना संभव नहीं है। कुतबन की मृगावती और मलिक मोहम्मद जायसी की पद्मावत इसके उदाहरण हैं। भक्ति काल के निर्गुणवादी कवि भी ईश्वर के ऐसे निराकार रूप में विश्वास करते थे जिसे देखना संभव नहीं और जो किसी भी भौतिक आकार और रूप से परे है। कबीर इसकी सबसे नुमायाँ मिसाल हैं। जिन्हें बहुत से सूफ़िया, मोवहिद अर्थात् वहदतुल वजूद में विश्वास रखने वाला बताते हैं और अपने युग का बहुत बड़ा वली करार देते हैं।

सूफ़िया को आवाम में जो इज्जत और सम्मान मिला उसकी वजह उनका जनसाधारण से गहरा सम्बन्ध था। क्योंकि तसव्वुफ़ प्रो. मोहम्मद हबीब के शब्दों में कमज़ोरों और पीड़ितों का पंथ था। और इसका उद्देश्य इंसानियत की सेवा करना था। सूफ़ियों की शिक्षा पर अगर ग़ौर किया जाए तो स्पष्ट नज़र आता है कि वो इंसान के आध्यात्मिक प्रशिक्षण पर बहुत ज़ोर देते थे और उसे अच्छा इंसान बनाने पर सारा ध्यान देते थे। चुनांचे उनकी ख़ानक़ाहों में ऐसा माहौल या फ़िजां

नज़र आती है जिसमें इंसान की नैतिक शिक्षा और प्रशिक्षण सम्भव हो सके।

ख़लीक़ अहमद निज़ामी लिखते हैं कि तसव्वुफ़ की परिभाषाओं को अगर एक जगह एकत्र किया जाए तो मालूम होगा कि अधिकतर परिभाषाएं ऐसी हैं जिनमें तसव्वुफ़ को नैतिकता का पर्याय बताया गया है। सूफ़ियों के अनुसार तसव्वुफ़ का उद्देश्य यह है कि इंसान या मनुष्य अपने अंदर अच्छे संस्कार पैदा करे और दुनिया के दूसरे लोगों को मादी नज़ासतों से पाक और साफ करे। पूरी मानवता के साथ अच्छे सम्बन्ध रखना, टूटे हुए दिलों को जोड़ना, बुराई से बचाना, भलाई की तरफ बुलाना ये वो काम हैं जो एबादात से ज्यादा अहम हैं। हज़रत शेख निज़ामुद्दीन औलिया फरमाया करते थे कि बहुत नमाज़ पढ़ना, मंत्रोच्चारण में व्यस्त रहना, कुरान का बहुत ज्यादा पाठ करना ये सब काम बिल्कुल मुश्किल नहीं। हर साहसी व्यक्ति कर सकता है। यहाँ तक कि एक कमज़ोर बुढ़िया भी कर सकती है। निरंतर उपवास रख सकती है, रातों को उठ-उठकर तहज्जुद (रात को पढ़ी जाने वाली एक नमाज़) पढ़ सकती है। लेकिन ख़ुदा के असल बंदों का काम कुछ और है।

हज़रत निज़ामुद्दीन ने इस बात को विभिन्न तरीकों से अनेकों स्थान पर समझाया है। एक अवसर पर उन्होंने फरमाया :

> अताअत (फरमाबरदारी) दो तरह की होती है, लाज़िमी और मुतअद्दी। लाज़िमी वो है जिसका लाभ सिर्फ करने वाले को पहुँचे। ये नमाज रोज़ा, हज और तसबीह हैं। मुतअद्दी वो है जिससे दूसरों को लाभ पहुँचे, जैसे एकता, कृपा, दूसरों के हक़ में मेहरबानी करना वगैरह। इसका पुण्य बहुत ज्यादा है।

इन्हीं हज़रत निज़ामुद्दीन के शिष्य और खलीफ़ा हज़रत नसीरूद्दीन चिराग़ देहलवी का कथन है कि तसव्वुफ़ सच्चाई का रास्ता उच्च

नैतिक मूल्यों और अच्छे संस्कार का नाम है।

सूफ़िया की ख़ानक़ाहों में ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे कि उनके अंदर अच्छी आदतें और संस्कार पैदा हों। यहां लोग दूर-दूर से पहुंचते थे और कुछ अस्थाई तौर पर रहते थे जिनकी तरबीयत सूफ़ियों और उनके शिष्यों के जिम्मे थी। हज़रत निज़ामुद्दीन की ख़ानक़ाह के वातावरण का उल्लेख करते हुए प्रो. मोहम्मद हबीब ने लिखा है कि यहां रहने वाले सब साथ खाना खाते थे। सहायता के तौर पर पड़ोसी अगर कुछ दे दें तो ठीक है वरना सभी लोग मेहनत-मजदूरी करते थे और हर व्यक्ति के लिए आवश्यक था कि वो खाने-पीने के इंतजाम के लिए कुछ न कुछ मुहैय्या करे। सैरुल औलिया में शेख फरीदुद्दीन गंजशकर के जमाअत खाना (ख़ानक़ाह) में लोगों के जंगल से लकड़ियां काटने का उल्लेख है। सभी सूफ़ी निजी सम्पत्ति के विरोधी थे और कहा जाता है कि हज़रत निज़ामुद्दीन किसी को अपना शिष्य उस वक्त तक नहीं बनाते थे जब तक कि वो अपनी सभी चीज़ें गरीबों में न बांट दें। हुकूमत की तरफ से किसी सेवा पद को स्वीकार करने का सवाल ही नहीं पैदा होता था। मोहम्मद हबीब के अनुसार शेख निज़ामुद्दीन ने अपने एक शिष्य से खिलाफ़तनामा सिर्फ इस बुनियाद पर वापिस ले लिया था कि उसने अपने कुनबे की निर्धनता की वजह से दो दिन तक सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के इस फरमान पर गौर किया था जिसमें उससे अवध का काज़ी बनाने की पेशकश की गई थी। रोज़ी के लिए दो सूरतें अख्तियार करने की इजाज़त थी कि एक तो पड़ोसियों से बिला मांगे मिलने वाली मदद जिसको फुतुह कहते हैं और दूसरे खेती।

सूफ़िया की ख़ानक़ाहों में इल्मी बातचीत, शेरो-शायरी, तर्क-वितर्क का माहौल होता था। हम देखते हैं कि हज़रत निज़ामुद्दीन के मुरीदों में अमीर खुसरो और हसन देहलवी जैसे महान कवि भी नज़र आते हैं और ज़ियाउद्दीन बरनी जैसे अपने युग के सबसे बड़े इतिहासकार भी। इससे सूफ़िया की ख़ानक़ाहों के माहौल का अंदाज़ा किया जा

सकता है। खुसरों और बर्नी दरगाह में ही दफ़न है।

इस तरह हम देखते हैं कि मध्यकाल में भारत में सूफ़ियाना विचारधारा ने अपनी जड़ें जमा ली थीं। अमीर-गरीब, राजा और प्रजा, बादशाह और शहज़ादे भी इसके रंग में रंगे हुए थे। दाराशिकोह का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। जो अपने अहद के सूफ़ियों से गहरी श्रद्धा रखता था। अकबर को भी हज़रत मोइनुद्दीन चिश्ती और सलीम चिश्ती से गहरी श्रद्धा थी। विभिन्न धर्मों में भी उसकी रूचि थी जिसके कारण उसने फतेहपुर सीकरी में इबादतखाना तामीर कराया और दीन-ए-इलाही की नींव रखी। जिसे सभीधर्मों को एक-दूसरे के निकट लाने की एक अच्छी कोशिश कहा जा सकता है। जिसमें उसे बहुत हद तक सफलता भी मिली। मगर इसकी प्रतिक्रिया भी हुई। जो हमें इस युग की एक ऐसी शख्सियत में नज़र आती है जिसमें वहदतुल वजूद की शिक्षा अपने पिता से हासिल की थी। उनका नाम शेख अहमद सरहिंदी है। वो खुद सूफ़ी थे और अपने ज़माने के एक महान सूफ़ी ख्वाजा बाकी बिल्लाह के मुरीद थे। ऐसा मालूम होता है कि वो अकबर की बहुत सी नीतियों के विरूद्ध थे और उन्हें इस्लाम के खिलाफ़ समझते थे। इस्लाम के बारे में उनकी राय सूफ़िया से भिन्न और बहुत हद तक कट्टर उलमा जैसी थी। हालांकि बहुत से उलमा ने भी उनके विचारों और व्यक्तिगत अनुभवों को नकार दिया था। शेख सरहिंदी ने वहदतुल वजूद के विपरीत एक दीगर विचारधारा पेश की। जिसे वहदतुश शहूद कहते हैं। और जिसका मूलमंत्र वहदतुल वजूद के हमाउस्त अर्थात् सब कुछ ख़ुदा है, के बजाय सब कुछ ख़ुदा से है, पर आधारित है। इसलिए खालिक (रचयिता) और मख़लूक़ (रचना) को एक समझना भूल है। शेख सरहिंदी का अपने बारे में ये मानना था कि वो इस्लाम के इतिहास के पहले हजार साल के मुज्दिद (नवीनीकरण करने वाला) हैं और उन्हें ईश्वर ने इस्लाम को उसकी अपनी शुद्ध अवस्था को लौटाने के लिए दुनिया में भेजा है।

शेख अहमद सरहिंदी के नवीनीकरण के इस आंदोलन की मुखालफ़त उनके ही गुरू के बेटों ख्वाजा कलां (बड़े ख्वाजा) और ख्वाजा खुर्द (छोटे ख्वाजा) ने की। ये दोनों अपने पिता ख्वाजा बाकी बिल्लाह की तरह वहदतुल वजूद के नज़रिए पर कायम रहे। चिश्तिया और कादरिया सिलसिले के सूफ़ियों के विरोध के कारण ये आंदोलन औरंगजेब के शासनकाल के आख़िरी दिनों में दम तोड़ चुका था। 18वीं शताब्दी में नक्सबंदिया सिलसिले के दो सूफ़ियों मिर्ज़ा मज़हर जानजानाँ और ख्वाजा मीरदर्द ने जो उर्दू के शायर भी थे, इसमें नई रूह फूंकने की कोशिश की। मगर इन दोनों में वो कट्टरपन नहीं जो सरहिंदी में था और ये दोनों सभी धर्मों के सच्च होने के कायल थे।

आज सल्फ़ी और वहाबी इस्लाम की जो शक्ल देखने को मिलती है और जिसके नतीजे में इस्लामी जगत के बड़े हिस्से में मानव जीवन नरक बन चुका है उसकी मिसाल इससे पहले कभी नज़र नहीं आती। इस्लाम की व्याख्या जिस तरह की जा रही है उसके अनुसार बस एक दृष्टिकोण सही है और इसमें इसी वैचारिक विभिन्नता के लिए कोई स्थान नहीं। इस उग्र सोच ने बड़ा हिंसात्मक रूप ले लिया है। जिसके नतीजे में मस्जिदों, दरगाहों, इमाम बारगाहों और दीगर धार्मिक स्थलों पर बम धमाकों में मासूम और बेगुनाह लोगों की हत्या आम बात हो चुकी है। शुद्ध इस्लाम के नामलेवा निश्चित ही तसव्वुफ़ जैसे इंसान दोस्त नज़रिए को भी इस्लाम के खिलाफ़ बताते हैं। हमारी बहस का विषय यह नहीं कि इस्लाम की मूल शिक्षाएं क्या हैं और क्या तसव्वुफ़ इसका विरोधी है। हम तो सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि तसव्वुफ़ के बारे में कुरान और हदीस के बड़े विद्वानों का दृष्टिकोण कभी भी नकारात्मक नहीं रहा है। आज सूफ़ियों के मज़ारों और दरगाहों पर पहुंचने वालों का अगर आर्थिक और मानसिक शोषण होता हो तो ये एक अलग समस्या है। जिसके कारण तसव्वुफ़ और सूफ़िया को इल्ज़ाम नहीं दिया जा सकता।

शब्दावली

अदम	शून्य
आरिफ़	वली, ज्ञानी
इस्तग़ना	बेपरवाही
इश्क़-ए-मजाज़ी	लौकिक प्रेम
इश्क़ हक़ीक़ी	अलौकिक प्रेम
ईसार	स्वार्थ का त्याग
कश्फ़	खोलना, ज़ाहिर होना
क़िनाआत	जो भी है उस पर राज़ी-खुशी होना
कैफ़ियत	हालत, दशा
ज़हूर	प्रकट होना
ज़ात	हकीकत, सत्य, ईश्वर
तजल्ली	परदे का हटना, प्रकट होना, चमक, जलवा
तर्क	त्याग
तरीक़त	सूफ़िया का रास्ता
तवक्कुल	भरोसा
फ़ना	नश्वरता
फ़िक्र	फ़क़ीरी
बक़ा	अनश्वरता
बसीरत	आत्म प्रकाश, आगाही
बातिन	अंदर, भीतर, मन
मज़हर	प्रकट होने की अवस्था, अभिव्यक्ति
मारिफ़त	ज्ञान, सिद्धि
मारिफ़त-ए-इलाही	ब्रह्मज्ञान
मौजूदात	संसार की सभी चीज़ें, वस्तुएं
वजूद	अस्तित्व
वजूद-ए-हक़ीक़ी	अलौकिक अस्तित्व
विजदान	विवेक शक्ति
सालिक	ईश्वर की निकटता का इच्छुक

सन्दर्भ ग्रंथ

पुस्तिका सीरीज़ के इस संस्करण में निम्नलिखित किताबों से विशेष रूप से मदद ली गई है :

1. शेरूउल अजम (भाग 5)
   —शिब्ली नोमानी

2. उर्दू शायरी का फ़िकरी और तहज़ीबी पसमंज़र
   —प्रो. मोहम्मद हसन

3. तारीख़ मशायख़-ए-चिश्त
   —प्रो. ख़लीक अहमद निज़ामी

4. आब-ए-कौसर
   —शेख मोहम्मद इकराम

5. The Wonder That Was India-II
   —S.A.A. Rizvi

6. History of God
   —Karen Armstrong

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन : 091-26177904, टेलीफैक्स : 091-26177904

ई-मेल : notowar.isd@gmail.com /वेबसाइट : www.isd.net.in

मुद्रण : डिजाइन एण्ड डाइमेन्शंस, एल-5 ए, शेख सराय, फेज-II, नई दिल्ली-110017